जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है । आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है ।

– रामचंद्र शुक्ल

साहित्येतिहास भी, अन्य प्रकार के इतिहासों की तरह, कुछ विशिष्ट लेखकों और उनकी कृतियों का इतिहास न होकर, युग विशेष के लेखक-समूह की कृति-समष्टि का इतिहास ही हो सकता है ।

– नलिन विलोचन शर्मा

हिंदी भाषा और साहित्य का आरंभ

हिंदी भाषा और साहित्य का आरंभ कब से मानना चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर बहुत आसान नहीं है । वस्तुत: इस प्रारंभिक काल का सीमा-निर्धारण हिंदी साहित्य के इतिहास का सर्वाधिक विवादास्पद विषय रहा है । हिंदी साहित्य का प्रारंभ वहाँ से मानना चाहिए, जहाँ से हिंदी भाषा का प्रारंभ हुआ है । हिंदी जिस भाषाधारा के विशिष्ट दैशिक और कालिक रूप का नाम है, भारत में उसका पूर्ववर्ती रूप अपभ्रंश है । हिंदी भाषा अपभ्रंश से कब निकली, इस संबंध में विद्वानों और इतिहास लेखकों में मतैक्य नहीं है ।

हिंदी भाषा का विकास एक जनभाषा के रूप में हुआ है । कोई भी जनभाषा अपने प्रवाह की अक्षुण्णता में सदा एकरूप नहीं रह सकती । स्थान और काल के भेद से उसमें रूप-भेद भी स्वत: उत्पन्न हो जाते हैं, किंतु जब तक उन रूपों की तात्त्विक एकता सुरक्षित रहती है तब तक वे एक ही भाषा का बोध कराते हैं । हिंदी भाषा ने भी स्थान और काल के भेद से अपनी दीर्घ यात्रा में अनेक रूप धारण किए

हैं। मैथिली, भोजपुरी, मगही, अँगिका, वज्जिका, अवधी, कन्नौजी, बघेलखंडी, बुंदेलखंडी, ब्रज, खड़ीबोली, बांगरू, मेवाती, हाड़ौती, मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूँढारी, मालवी, पहाड़ी आदि इसके अनेक रूप-भेद पाए जाते हैं, किंतु इन सब में तात्त्विक एकता विद्यमान है। अत: भाषा के रूप-भेद को भुलाकर तात्त्विक परिवर्तन के आधार पर ही एक भाषा के अंत और दूसरी भाषा के आरंभ का इतिहास स्वीकार करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इसी दृष्टि से अपभ्रंश को एक अलग भाषा मानकर उसके समानांतर तात्त्विक आधार पर भिन्नरूप से विकसित भाषा को पृथक नाम देने की आवश्यकता है । यद्यपि अपभ्रंश अपने मूल रूप में पंद्रहवीं शताब्दी तक साहित्य की भाषा बनी रही, तथापि सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही बोलचाल की भाषा पृथक होकर उसके समानान्तर साहित्य रचना का माध्यम बन गई थी। इसी भाषा को कुछ विद्वानों ने 'उत्तर अपभ्रंश' या 'पुरानी हिंदी' कहा है और कुछ विद्वानों ने 'अवहट्ठ' नाम दिया है। परंतु वास्तविकता यह है कि वह भाषा 'हिंदी' है, उसे 'उत्तर अपभ्रंश' या 'अवहट्ठ' नाम देना भ्रम उत्पन्न करना है। जिन विद्वानों ने ये नाम दिए हैं, वे भी अपने मत के अंतर्गत प्राय: उक्त तथ्य का समर्थन करते रहे हैं । उनके अनुसार अपभ्रंश में शब्दों के तद्भव रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति थी, किंतु जब उसमें तत्सम रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति विकसित होने लगी तब एक नई भाषा का रूप उभरा, जिसे हिंदी कहना चाहिए। वस्तुत: जनभाषा होते हुए भी हिंदी की यही एक ऐसी प्रवृत्ति है जो अपभ्रंश के बाद भी अब तक निरंतर बढ़ती रही है। अत: जिन विद्वानों ने अपभ्रंश के अतिरिक्त अवहट्ठ का झगड़ा खड़ा किया है, वे हिंदी के आरंभिक विकास को उसके आगे की धारा से काट देना चाहते हैं । इस दृष्टि से सिद्धों की रचनाओं से हिंदी साहित्य का आरंभ मानना युक्तिसंगत है। उनके साहित्य की भाषा अपभ्रंश के 'उत्तरभाषा' रूप की सूचना देती है तथा साहित्यिक अपभ्रंश से खुलकर विद्रोह कर रही होती है।

साहित्य के आरंभ का निर्णय भाषा के आधार पर तो किया ही जा सकता है, इसके अतिरिक्त एक दूसरा तत्त्व भी है, जिसे हम साहित्य की चेतना कह सकते हैं । सिद्धों की रचनाओं में यह तत्त्व नए रूप में विकसित होता हुआ दिखाई देता है तथा अपभ्रंश के साहित्य से उनका खुला विद्रोह भी झलकता है । सिद्धों की वस्तु-दृष्टि जिस धार्मिक चेतना पर आधारित है उसका सीधा संबंध 'नाथ साहित्य' से होता हुआ हिंदी के भक्तिकालीन कवियों से जुड़ता है । अत: भाषा के विकास की आरंभिक स्थिति तथा उत्तरवर्ती धार्मिक चेतना के मूल रूप को ध्यान में रखकर सिद्ध साहित्य से हिंदी साहित्य का आरंभ मानना पूर्णत: युक्तिसंगत है ।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने सातवीं शताब्दी के सिद्धकवि सरहपा को हिंदी का प्रथम कवि माना है । वे 84 सिद्धों में से एक थे । उनकी कविता में अपभ्रंश का साहित्यिक रूप छूट गया है तथा बोलचाल की भाषा, जो आरंभिक हिंदी है, प्रयुक्त हुई है । वर्ण्य-विषय और चेतना की दृष्टि से भी उनका काव्य हिंदी साहित्य के भक्तिकाल का बीजांकुर है । एक तीसरा आधार और है जिस पर हम सरहपा को प्रथम हिंदी कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर सकते हैं, वह है शैली और रचना-रूप की परंपरा । सरहपा ने 'दोहा' और 'पदों' की शैली अपनी कविता में प्रयुक्त की है । यह शैली उनके बाद के प्राय: सभी हिंदी कवियों ने परंपरा के रूप में अपनाई है । हिंदी मुक्तक काव्य में 'दोहा' सबसे अधिक प्रिय छंद रहा है । उपर्युक्त तर्क की पुष्टि के लिए राहुल जी द्वारा प्रस्तुत 'हिंदी काव्य धारा' में संगृहीत सरहपा की रचना का एक अंश उद्धृत किया जाता है –

"जह मन पवन न संचरइ, रवि शशि नाह पवेश ।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेश ।।"

यद्यपि इस उद्धरण में अपभ्रंश भाषा के व्याकरण की प्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं तथापि हिंदी के रूप की झलक ही अधिक स्पष्ट है, साथ ही तत्समता की जिस प्रवृत्ति को हिंदी भाषा का मूल रहस्य माना गया है, वह भी 'पवन', 'रवि', 'शशि', 'वट', 'चित्त' आदि शब्दों में स्पष्टत: देखी जा सकती है । अत: सातवीं शताब्दी से हिंदी भाषा और साहित्य का प्रारंभ माना जाना चाहिए ।

काल विभाजन एवं नामकरण

आदिकाल	–	सातवीं शती के मध्य से चौदहवीं शती के मध्य तक ।
भक्तिकाल	–	चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक ।
रीतिकाल	–	सत्रहवीं शती के मध्य से उन्नीसवीं शती के मध्य तक ।
आधुनिक काल	–	उन्नीसवीं शती के मध्य से अब तक :

(क)	भारतेंदु युग	–	1857-1900 ई०
(ख)	द्विवेदी युग	–	1900-1918 ई०
(ग)	छायावाद युग	–	1918-1938 ई०
(घ)	छायावादोत्तर युग :		
	(i) प्रगति-प्रयोग काल	–	1938-1953 ई०
	(ii) नवलेखन काल	–	1953 ई० से अब तक

❑❑❑